फलित ज्योतिष भारतीय परंपरा नहीं, पश्चिमी अंधविश्वास है

चन्द्रकांत राजू

बीस साल पहले विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) ने वैदिक ज्योतिष पढ़ाने की ठानी थी। इसके लिए सोलह विश्वविद्यालयों में ज्योतिष विभाग खोलने की योजना बनी थी। इसका बहुत विरोध हुआ था। दिवंगत कपिला वात्सयायन ने इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में एक संगोष्ठी आयोजित की, जिसमें वैज्ञानिकों और ज्योतिष शास्त्रियों के बीच सार्वजनिक बहस होने की उम्मीद थी। हम तीन, दिवंगत पुष्पा भार्गव और दिवंगत राजा रामन्ना के साथ मैं, वैज्ञानिकों की तरफ से थे। लेकिन ज्योतिषी सब भाग गए। उत्तराखंड के कुछ और मंचों पर कुछ ज्योतिषियों के साथ मेरी सार्वजनिक बहस हुई। आखिरकार यूजीसी ने अपनी योजना रद्द कर दी।

अब वही मुद्दा दोबारा सामने आ गया है। पुन: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने ज्योतिष में स्नातकोत्तर डिग्रियां देने का ऐलान किया है। इसलिए बीस साल पहले इस संबंध में दिए कुछ स्पष्टीकरणों को दोबारा याद करने की जरूरत आ गई है।

सबसे पहला स्पष्टीकरण यह कि ज्योतिष और फलित ज्योतिष में फर्क करना अत्यंत जरूरी है। बीस साल पहले की उस योजना में न केवल ज्योतिष बल्कि वैदिक ज्योतिष पढ़ाने की कल्पना थी। लेकिन वेदों में फलित ज्योतिष का जिक्र नहीं है। तब मैंने

अंतरराष्ट्रीय प्रेस के सामने इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में इकट्ठा विद्वानों को चुनौती दी थी कि वेदांग ज्योतिष में फलित ज्योतिष संबंधी एक वाक्य भी दिखा दें। कोई नहीं दिखा पाया। उन विद्वानों में किसी ने भी वेदांग ज्योतिष को कभी देखा तक नहीं था, और कुछ मेरी प्रति मांगने लगे। वेदांग ज्योतिष में ज्योतिष शब्द का अर्थ केवल काल-गणना है, और वह केवल काल गणना का नियम-संग्रह है। फलित ज्योतिष से पूरी तरह पृथक है।

पुराने जमाने में काल गणना खगोल शास्त्र से ही हो सकती थी। तब ना तो मोबाइल फोन था ना ही कलाई पर पहनने वाली घड़ी, ना ही कोई गिरजाघर या टाउन हॉल पर लटकी घड़ी, ना ही ब्रिटिश हुकूमत वाली घंटे बजाने की प्रथा थी। लेकिन ज्योतिष और फलित ज्योतिष का अलगाव केवल वेदांग ज्योतिष तक सीमित नहीं है। वेदांग ज्योतिष के नवीनतम अद्यतन का वक्त-1500 ईसाई माना जाता है, जब कि नीलकंठ का आर्यभटीयभाष्य लगभग 1500 ईसाई का माना जाता है। इस तीन हज़ार साल के दौरान हिंदुस्तान में गणित और खगोल शास्त्र की अनेक पुस्तकें लिखी गयीं, जैसे कि शुल्ब सूत्र, बक्षाली पाण्डुलिपि, सूर्य सिद्धांत, आर्यभटीय, लघु और महा भास्करीय, शिष्यधीव्रद्धिद, गणितसारसंग्रह, वटेश्वर सिद्धांत और गोल, लीलावती, बीजगणित, गणित कौमुदी, तन्त्रसंग्रह, युक्तिदीपिका, इत्यादि। इन सभी पुस्तकों में किसी एक में भी फलित ज्योतिष का एक वाक्य भी नहीं पाया जाता है। हिंदुस्तान में फलित ज्योतिष की शुरुआत का श्रेय वराहमिहिर, और उसकी किताब बृहदसंहिता, को दिया जाता है।

लेकिन वराहमिहिर के गणित और खगोल शास्त्र की किताब पंचसिद्धांतिका में भी फलित ज्योतिष से संबंधित एक वाक्य भी नहीं मिलता।

लेकिन औपनिवेशिक विधि से शिक्षित बहुत लोगों का यह भ्रम है कि ज्योतिष और फलित ज्योतिष पर्यायवाची है। क्योंकि हमारे राष्ट्रवादी लोग भी उसी औपनिवेशिक विधि से शिक्षित हैं। उनका भी यही भ्रम है। इसलिए बार-बार इसी मुद्दे पर फँस जाते हैं कि हमारी फलित ज्योतिष की वैदिक काल से परंपरा रही है, और यह प्राचीन पारंपरिक ज्ञान और वेद का अंश है। बीस साल पहले जब मद्रास के उच्च न्यायालय में यूजीसी की ज्योतिष योजना के खिलाफ दलील की गई, तब यूजीसी ने अपने जवाब में यही कहा कि फलित ज्योतिष हमारे पारंपरिक ज्ञान का महत्वपूर्ण हिस्सा है और न्यायाधीश ने यह बात सहर्ष स्वीकार कर ली। हिंदी फिल्मों का एक मशहूर डायलाग है कि अदालत को बस सबूत चाहिए, लेकिन ज्योतिष हमारे पारंपरिक ज्ञान का महत्वपूर्ण हिस्सा था इस बात का सबूत किसी ने न मांगा न दिया।

वैसे पश्चिम में भविष्यवाणी की प्रथा जरूर थी। ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस ग्रीक इतिहास क्रोएसस से शुरू करता है, जिसने सबसे पहले अपने साम्राज्य में यूनानियों को आधीन बनाया। क्रोएसस फारस वासियों से जंग छेड़ना चाहता था। लेकिन उसके पहले उसने डेल्फी के भविष्यवक्ता से पूछा कि इस जंग का अंजाम क्या होगा। भविष्यवक्ता ने कहा कि "एक बड़ा साम्राज्य गिरेगा”। क्रोएसस को शंका थी कि शायद वह बड़ा साम्राज्य उसी का तो ना हो। इसलिए उसने दोबारा डेल्फी के भविष्यवक्ता से पूछा

उसका राज्य कब तक चलेगा। जवाब मिला “जब तक कि एक खच्चर ईरान पर राज करेगा”। भविष्यवक्ता की इस चालाकी को क्रोएसस समझ ना पाया। आश्वस्त होकर उसने जंग छेड़ी और हार गया। बाद में भविष्यवक्ता ने समझाया कि ईरान का शासक साइरस ही वह खच्चर था, क्योंकि वह मिश्रित नस्ल का था। अगर युद्ध का कुछ और परिणाम निकलता तो शायद भविष्यवक्ता की व्याख्या भी बदल जाती!

लगभग उसी समय गौतम बुद्ध शील समझा रहे थे (ब्रह्मजाल सुत्त, महाशील) कि वे ऐसे अनैतिक तरीके से युद्ध नहीं जीते जाते हैं। "यहां के राजा की जीत होगी और वहां के राजा की हार...इस प्रकार की हीन विद्या से निन्दित जीवन नहीं बिताना"। या "जैसे कि कुछ लोग अच्छी या बुरी बारिश की भविष्यवाणी करते हैं, इस प्रकार श्रमण गौतम नहीं”। कहने के अंदाज से जाहिर है गौतम बुद्ध यह मानकर बोल रहे थे कि सभी लोग इस मामले में नैतिकता और अनैतिकता की बात से सहमत हैं। यानी कि यह कोई विशेषत: बौद्ध नैतिकता नहीं, बौद्ध धर्म के पहले की सामान्य नैतिकता थी।

औपनिवेशिक शिक्षा के शिकार लोगों का यह भी मानना है कि हिंदुस्तान में बहुत अंधविश्वास था। किसी भी समाज में कई विकार अवश्य रहते हैं। लेकिन, जैसे ऊपर कहा, फलित ज्योतिष हिंदुस्तानी पारंपरिक विज्ञान का कोई अंश नहीं था। लेकिन पश्चिम में भविष्यवक्ताओं को बहुत ऊंचा मजहबी कद दिया गया... बल्कि क्रुसेड के दौरान ईसाइयों ने इस्लाम को नीचा दिखाने के लिए यह भी कटाक्ष किया कि पैगंबर

मोहम्मद ने कोई भविष्यवाणी नहीं की। इस कटाक्ष का मुसलमानों ने विचित्र जवाब दिया। अंग्रेजी में पैगंबर का गलत अनुवाद भविष्यवक्ता (प्रोफेट) किया।

आज के खगोल शास्त्र में केप्लर के नियम प्रसिद्ध हैं। लेकिन चर्च के साम्राज्य में ऊंचा पद मिलने के पहले केप्लर की आजीविका में फलित ज्योतिष का बहुत महत्व था। इसलिए केपलर ने लिखा कि खगोल शास्त्रियों के लिए फलित ज्योतिष को आजीविका का साधन बनाना गॉड द्वारा बनाई पूर्वस्थापित सद्भावना का सबूत है! लेकिन आज की तारीख में किसी की हिम्मत नहीं है कि वह केप्लर को अंधविश्वासी बताए।

वैसे हिंदुस्तानी कई खगोल शास्त्रियों ने अंधविश्वास के खिलाफ आवाज उठायी। अक्सर कहा जाता है कि हिंदुस्तानी राहु को ग्रहण का कारण मानते थे। पौराणिक मिथक में ऐसी सोच जरूर पाई जाती है। लेकिन आठवीं सदी में लल्ल की शिष्यधीव्रद्धिद के बीसवें अध्याय का शीर्षक है मिथ्याज्ञान निराकरण। इसमें में वे कई कारण देते हैं कि ग्रहण का कारण राहु नहीं हो सकता। बीसवें अध्याय के 26वें श्लोक में कहते हैं कि अलग-अलग प्रदेशों में सूर्य ग्रहण अलग अलग दिखाई देता है, और कहीं कहीं तो दिखाई ही नहीं देता। यह जानकर कौन कह सकता है कि ग्रहण का कारण राहु है। हमें नाज होना चाहिए कि हिंदुस्तान में मजहबी मिथ्याओं के खिलाफ बोलने की प्रथा थी। इसके विपरीत, पश्चिम में। 17वीं शताब्दी तक किसी मजहबी विचार के खिलाफ

बोलने वालों को जिओर्डानो ब्रूनो के समान जिंदा जला दिया जाता था। लेकिन हिन्दुस्तानी ही एकमात्र अन्धविश्वासी माने जाते हैं।

यह तो औपनिवेशिक शिक्षा की देन है कि हिंदुस्तान में वैज्ञानिक परंपरा का जिक्र कोई नहीं करता। यह तो समझ में आता है कि उपनिवेशवाद ने बहुत सारी झूठी कहानियां फैलाईं जिससे कि हम पश्चिम की सराहना और नक़ल करें और अपने आप को जलील समझें। लेकिन यह नहीं समझ में आता राष्ट्रवादी भी क्यूं इस बात पर डटे हुए हैं की अंधविश्वास ही हमारी परंपरा थी, और विज्ञान सिर्फ पश्चिमी परंपरा है। यह कैसा राष्ट्रवाद है?

(लेखक भारतीय शैक्षणिक संस्थान में मानद प्रोफेसर हैं)